शरिया अदालतों की वास्तविकता

हाल ही में ऑल इंडिया मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड ने भारत के हर जिले में दारूल-कज़ा या शरिया अदालत खोलने का निर्णय लिया है। इसका उद्देश्य वकीलों और आम जन को शरिया कानून से अवगत कराना और इस्लामिक कानून के अनुसार न्याय करना है। फिलहाल उत्तरप्रदेश में ऐसी 40 अदालतें काम कर रही हैं।

एक आम धारणा यह है कि केवल मुस्लिम ही न्याय के लिए शरिया जैसी अदालतों का सहारा लेते हैं। जबकि वास्तविकता में जाति परिषदें, संप्रदाय परिषदें और अनेक नागरिक समाज ऐसे हैं, जो अलग-अलग तरह से देशभर में न्याय दिलाने का काम कर रहे हैं। ये संस्थाएं मुख्यतः पारिवारिक अदालतों का काम करती हैं। अतः शरिया अदालत कोई अपवाद नहीं है।

शरिया कोर्ट का लाभ यह है कि ये न्याय पाने का अनौपचारिक, सस्ता एवं मानवीकृत साधन हैं। इन सबसे ऊपर इस प्रकार के न्यायिक तंत्र में परस्पर मेलमिलाप के जरिए न्याय आसानी से पाया जा सकता है।

शरिया अदालतों ने महिलाओं को न्याय दिलाने में अहम् भूमिका निभाई है। इसके माध्यम से महिलाओं ने अपना दहेज वापस प्राप्त करने और पति को तलाक के सबूत पेश करने के लिए तैयार करने में सफलता पाई है। इतना ही नहीं, तलाक की इच्छुक महिलाओं को भी इन अदालतों से मदद मिली है। प्रतिकूल परिस्थितियों में दिए गए तीन तलाक को चुनौती देने का काम भी इन अदालतों ने किया है, और तलाकशुदा जोड़ों को वापस जोड़ा भी है।

शरिया अदालतों ने धार्मिक और राज्य कानूनों को सुसंगत बना दिया है। उदाहरण के लिए शरिया अदालतों ने मुस्लिम महिलाओं को डिजाल्यूशन ऑफ मुस्लिम वीमेन्स एक्ट, 1939 के अनुसार ही तलाक के आधार प्रस्तुत करने की छूट दी है। मुस्लिम महिलाओं को 'खुला' की छूट भी दी गई है। शरिया अदालतों के ये प्रावधान देश के कानून की तरह ही प्रगतिशील और महिलाओं को न्याय प्रदान करने की भावना से प्रेरित हैं।

उच्चतम न्यायालय ने भी शरिया अदालतों के बारे में कहा है कि 'यह न्याय पाने का अनौपचारिक माध्यम है, जिसमें दोनों पक्षों के बीच मैत्रीपूर्ण समझौता कराना सर्वोपरि समझा जाता है।'

शरिया अदालतों को लेकर अक्सर यह आरोप लगाया जाता है कि धार्मिक अदालतें अधिकांशतः पुरूषों का साथ देती हैं। लेकिन राज्य के कानून में भी तो ऐसे दोष देखने को मिलते हैं। आज भी एक हिन्दू पत्नी समान उत्तराधिकारी नहीं है। बेटों के होते, आज भी बेटियों को कृषि-भूमि में हिस्सा नहीं दिया जाता। ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं। यही कारण है कि शरिया अदालतों और फतवा पर प्रतिबंध की मांग के बावजूद उच्चतम न्यायालय ने इस पर कोई आदेश या दिशानिर्देश नहीं दिया है।

यदि विदेशों पर नजर डालें, तो ब्रिटेन में 80 शरिया अदालतें बखूबी काम कर रही हैं। यहूदियों और रोमन कैथलिकों में भी इस प्रकार की न्याय-व्यवस्था है, जो देश की अदालतों के समकक्ष काम करती है। यह जरूर है कि सार्वजनिक या जन-कानून और निजी-कानून में अंतर होता है। अगर कोई शरिया अदालतों का सहारा लेना चाहता है, तो कोई उसे रोक नहीं सकता। आपराधिक मामलों के लिए ऐसी अदालतें काम नहीं करतीं।

सौ बात की एक बात यह है कि भारत में न्याय-व्यवस्था चरमरा रही है। 20,558 न्यायाधीशों के पदों में से केवल 15,540 पद भरे हुए हैं। देश में जब न्यायाधीशों का अनुपात ही गड़बड़ाया हुआ है, तो न्याय कहाँ से मिलेगा? अमेरिका में जहाँ 10 लाख लोगों के लिए 107 न्यायाधीश हैं, हमारे पास 10 न्यायाधीश हैं। ऐसी स्थिति में शरिया जैसी अदालतें उस कमी को पूरा करने का काम कर रही हैं।

'द इंडियन एक्सप्रेस' में प्रकाशित फैजान मुस्तफा के लेख पर आधारित। 10 अगस्त, 2018